6

अपने विश्वास के अनुसार व्यवहार करना (1:19-27)

सुलैमान ने सभोपदेशक 6 का आरम्भ इन गम्भीर शब्दों के साथ किया, ''एक बुराई जो मैंने धरती पर देखी है, वह मनुष्यों को बहुत भारी लगती है'' (सभोपदेशक 6:1)। ऐसा लगता है कि हमारे अध्ययन का आरम्भ इन शब्दों के साथ करना उपयुक्त है, क्योंकि मसीह की देह के भीतर पाप इस समय भी है और याकूब के समय से ही है। इस बुराई ने हमारे आस-पास के संसार में हमारे प्रभाव को प्रभावित किया है। यह उन लोगों पर हमारे प्रभाव को कम करके नाकारा कर देता है, जिन्हें हम जानते हैं। यह पति और पत्नी के बीच तलाक की समस्या नहीं, बल्कि शिक्षा और व्यवहार के बीच अर्थात हमारे सुनने और करने के बीच की, यानी जो हम विश्वास करते और जैसे हम विश्वास करते हैं उसके बीच की समस्या है। याकूब ने परीक्षाओं तथा प्रलोभनों की समस्याओं से पहले ही दो-दो हाथ कर लिए हैं, परन्तु अब वह अपनी पत्री के मूल विषय को विस्तार देता है: *विश्वास से हमारे जीवन तथा कार्य करने के ढंग में अन्तर आता है*।

जब हम उन लोगों को देखते हैं जो कहते हैं कि किसी बात पर विश्वास करते हैं परन्तु पूरी तरह से किसी अलग बात को कर रहे होते हैं, तो हम आम तौर पर उन्हें कपटी कहते हैं। इसके लिए अंग्रेज़ी शब्द ''hypocrisy'' को यूनानी शब्द से लिया गया है, जो मंच पर भाग लेने या मंच पर भूमिका निभाने के लिए इस्तेमाल होता था। कोई नहीं बता सकता कि क्यों, पर लगता है कि धर्म में ''कपट'' सबसे अधिक बार मिलता है। लगभग हर व्यक्ति किसी न किसी को जानता है, जो रविवार के दिन कलीसिया की सभाओं में जाता और हर प्रकार से भाग लेता है, परन्तु सप्ताह के अन्य शेष दिनों में उसका जीवन पाप से भरा रहता है। यीशु ने लोगों से कहा (लूका 6:46) कि अपने जीवनों में किसी प्रकार की आज्ञा माने बिना होंठों से दावा करना केवल कपट है।

याकूब की पुस्तक स्पष्ट कर देती है कि वास्तविक विश्वास से हमारे जीवनों में हमारी सोच, हमारे व्यवहार, हमारी आशा, हमारी आदतों और मित्र चुनने की हमारी पसन्द आदि में बदलाव आता है। आत्मिक होने के हमारे दावों का कोई अर्थ नहीं है; महत्व इस बात का है कि हमारे जीवनों का नियन्त्रण प्रभु यीशु की इच्छा के आगे सौंपा गया है या नहीं।

1:19-27 में याकूब के द्वारा पवित्र आत्मा तीन क्षेत्रों की बात बताता है, जिनमें विश्वास से हमारे जीवन के ढंग में फर्क पड़ना चाहिए।

स्वभाव और जीभ (1:19, 20)

अपने क्रोध और अपनी जीभ को काबू में रखने की व्यक्ति की योग्यता यह दिखाने का सबसे बढ़िया टेस्ट है कि उसका विश्वास और उसका जीवन साथ-साथ चलते हैं। क्या आप अपने क्रोध पर काबू पा सकते हैं ? क्या आप जानते हैं कि अपनी जीभ को कब काबू में रखना

है ? एक व्यक्ति जो अपने क्रोध या तेज़ ज़बान के लिए प्रसिद्ध है मसीही के रूप में अपनी प्रतिष्ठा को बढ़ाएगा नहीं। इसी लिए याकूब कहता है, ''हे मेरे भाइयो, यह बात तुम जानते हो: इसलिए हर एक मनुष्य सुनने के लिए तत्पर और बोलने में धीरा और क्रोध में धीमा हो। क्योंकि मनुष्य का क्रोध परमेश्वर के धर्म का निर्वाह नहीं कर सकता है'' (याकूब 1:19, 20)।

याकूब इन सब खूबियों को एक ही परिस्थिति में बांध रहा है। आपने किसी व्यक्ति को नाराज़ होते और बातें आरम्भ करते कितनी बार देखा जबकि उसे सुन रहे होना चाहिए? यह असफलता धार्मिक संदर्भ होने पर विशेष महत्व रखती है। सदियों से मसीही लोग मज़ाक और व्यंग्य के पात्र बने रहे हैं और उन्होंने हमेशा मसीह जैसे ढंग से उत्तर नहीं दिया। कलीसिया की बहाली की हमारी अपनी लहर की बात करें और उस आलोचना पर विचार करें जो आम तौर पर उसकी होती है। आलोचना होने पर हम कैसे प्रतिक्रिया देते हैं ? क्या इससे हम नाराज हो जाते हैं और ''उन्हें सबक सिखाने'' की परीक्षा में पड़ते हैं ? ''सीटी खोलना'' और ''भाप निकालना'' स्वाभाविक और आसान बात लग सकती है पर यह सही बात नहीं है। याकूब कहता है कि यदि हमारे विश्वास से सचमुच फर्क पड़ता है तो हम ''बोलने में धीरे और क्रोध में धीमे'' होंगे (1:19)।

मस्तिष्क और मन (1:21)

जब सुसमाचार सुनाया जाता है तो अलग-अलग प्रतिक्रियाएं आती हैं। ऐथंस के दार्शनिकों ने ''ठट्ठा'' किया (प्रेरितों 17), परन्तु पिन्तेकुस्त के दिन तीन हज़ार लोगों ने सुसमाचार को ग्रहण करके इसकी आज्ञा मानी (प्रेरितों 2)। ''शुभ समाचार'' सुनाने पर ऐसा अन्तर क्यों ? यह अन्तर सुसमाचार में नहीं; बल्कि जैसे अलग-अलग प्रकार की मिट्टी वाले दृष्टांत में यीशु ने समझाया (लूका 8:4-15) था। यह अन्तर तो वचन को सुनने वालों का है।

''व्यावहारिक मसीहियत'' की इस पत्री में याकूब वचन के द्वारा दैनिक मसीही जीवन में होने वाले अन्तर पर ज़ोर के साथ इस विषय पर बात करता है। 1:21 का विषय परमेश्वर के वचन को ग्रहण करना है। वचन ''उद्धार'' दिला सकता है, परन्तु केवल तभी जब मसीही व्यक्ति इसे अपने मन में ''उगने'' (गहरी जड़ के साथ) देता है।

ऐसा मन बनाना कैसा रहेगा ? इस आयत में जो मन वचन को सही ढंग और अच्छे प्रभाव के साथ ग्रहण करता है उसका परिचय दो आवश्यक खूबियों वाले मन के रूप में दिया गया है। पहला तो यह कि इसे ''सारी मलिनता और वैर भाव की बढ़ती को दूर'' करना आवश्यक है। कई लोग वचन को अपने मनों में ''बोए जाने'' की अनुमति नहीं देती, क्योंकि इसमें इसके लिए कोई जगह नहीं है। जीवन के पुराने ढंग से उनका मन फिराव सम्पूर्ण नहीं होता। सुसमाचार किसी व्यक्ति में मसीही व्यवहार तथा समर्पण तब तक नहीं ला सकता जब तक वह पुराने जीवन की सभी पापपूर्ण चीज़ों को फैंक नहीं देता। दूसरा, सुसमाचार की डांट और सलाह ''नम्रतापूर्वक'' पानी आवश्यक है। कुछ मसीही लोग नाराज़ हो जाते हैं, जब बाइबल उन्हें किसी ऐसे पाप से जो करना उन्हें अच्छा लगता है, के लिए डांटती है और वे उनके ध्यान में लाने वाले प्रचारक या शिक्षक का विरोध करते हैं। मसीही व्यक्ति तब तक जैसा उसे बनना चाहिए नहीं बन सकता जब तक वह अपने आपको उस मार्ग से निकालकर अपने जीवन को परमेश्वर के वचन के द्वारा चलने

नहीं देता। अच्छे और फलदायक मन की बातें शुद्धता और नम्रता है। कोई भी व्यक्ति जिसके मन की तारीफ़ इन गुणों से की जा सकती है, वह आत्मिक सामर्थ और कद में बड़ा ही होगा।

चलन और कर्म (1:22-27)

सुसमाचार की सच्चाइयों के लाभदायक होने के लिए उन्हें व्यावहारिक और कार्यों में बदलना आवश्यक है। किसी आराधना सभा में जाकर किसी महत्वपूर्ण सच्चाई की ओर थोड़ा सा ध्यान देकर सरमन को सुनना किसी काम का नहीं होगा यदि उसके परिणाम के रूप में वास्तविक व्यवहार में कोई बदलाव नहीं आता। एक मण्डली में जहां मैं सेवक के रूप में काम करता था, मैं एक आदमी से मिला जिसे ''ऊंचे शोर वाले, सीधे, पंजों पर नचाने वाले और नरक की आग और गंधक'' जैसे सरमन सुनना पसन्द था। वह पिछले दरवाजे में आ जाता और बताता कि उसे ऐसा सरमन कितना पसन्द है, चाहे उसमें सीधे तौर पर उसी को लताड़ा गया होता। कई बार मेरे मन में आता, ''इसे इस प्रकार का सरमन क्यों पसन्द है, विशेषकर जब इसमें कभी ऐसा बदलाव दिखाई नहीं देता?'' एक दिन मुझे समझ आया कि उसे लगता था कि यदि वह सिर झुकाकर इस प्रकार के प्रवचन को ग्रहण कर ले तो सब सही होगा। इसी लिए याकूब कहता है, ''परन्तु वचन पर चलने वाले बनो, और केवल सुननेवाले ही नहीं जो अपने आप को धोखा देते हैं'' (1:22)।

वचन को मानने वाले होने की हमारी आवश्यकता बताते हुए याकूब तीन बातों की ओर ध्यान दिलाता है। पहले तो आयतें 23 और 24 में वह उस व्यक्ति का स्वभाव दिखाता है, जो सुनकर भूल जाता है। क्या आप किसी व्यक्ति के दर्पण में अपना चेहरा देखने और ''तुरन्त'' भूल जाने की कल्पना कर सकते हैं कि वह कैसा दिखाई देता है? याकूब के लिए वचन को सुनकर इसे तुरन्त भूल जाने वाले व्यक्ति की कल्पना करना कठिन होगा। कपटी आदमी सुनता है, स्वीकृति में सिर हिलाता है और सच्चाई को मानते हुए सहमति भी जताता है, परन्तु फिर थोड़ी देर के बाद वह अपनी इच्छा अनुसार जीवन बिताने के लिए निकल पड़ता है, चाहे ऐसा करके उसे उस सच्चाई का इनकार ही करना पड़े, जो उसने अभी-अभी सुनी है। दूसरा, आयत 25 में याकूब परमेश्वर द्वारा उन लोगों के लिए प्रतिज्ञा की हुई आशीष की बात करता है जो उसके वचन को मानने वाले हैं। यह स्पष्ट ही लगेगा कि यह आशीष उस उद्धार की है जिसका उल्लेख आयत 21 में हुआ था। अन्त में याकूब उनके सुनने और उस पर अमल करने की दो चुनौतियों के आज्ञापालन के साथ समाप्त करता है। पहले आयत 26 में याकूब पूछता है, ''क्या तुम ने अपनी जीभ को लगाम दी?'' याकूब इस दिक्कत को जानता है, जो जीभ के कारण उन में थी और हम में भी है; इसलिए वह बार-बार इस बात पर ज़ोर देता है कि हमारे विश्वास के लिए हमारी जीभ का कुछ किया जाना आवश्यक है। दूसरा आयत 26 में, वह जानना चाहता है कि क्या हम ज़रूरतमंद लोगों की देखभाल में लगे हुए हैं। हमारी संगति में दूसरों की सहायता करने के ''ढंग'' और ''कारण'' पर इतनी बहस हो चुकी है कि हम *ज़रूरतमंदों* को भूल गए हैं! हम लोग बड़े ही घटिया किस्म के कपटी होंगे यदि हम ज़रूरतमंदों को नज़रअन्दाज़ करें, क्योंकि हमारे परमेश्वर ने हमेशा उनकी चिंता की है। ज़रूरतमंद लोगों की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए हमें यीशु के नमूने का पालन करना होगा। यीशु लोगों से प्रेम करता था और उनकी ज़रूरतें पूरी करता चला गया। लोगों से प्रेम करने के कारण उसके संदेश को सुनना पसन्द

किया जाता था–हम भी ऐसा कर सकते हैं।

सारांश

प्राचीन इस्राएल के बड़े पापों में से एक अपने धर्म को रीति–रिवाज़ और कर्मकांड तक सीमित कर देना था। उन्होंने व्यावहारिक बातों को नज़रअन्दाज़ कर दिया और केवल इसके बाहरी रूप मानते रहे। मीका नबी ने इस सब के लिए यहोवा के मन की बात कही:

> मैं क्या लेकर यहोवा के सम्मुख आऊं, और ऊपर रहनेवाले परमेश्वर के साम्हने झुकूं? क्या मैं होमबलि के लिए एक–एक वर्ष के बछड़े लेकर उसके सम्मुख आऊं? क्या यहोवा हजारों मेढ़ों से, वा तेल की लाखों नदियों से प्रसन्न होगा? क्या मैं अपने अपराध के प्रायश्चित में अपने पहिलौठे को वा अपने पाप के बदले में अपने जन्माए हुए किसी को दूं? हे मनुष्य, वह तुझे बता चुका है कि अच्छा क्या है; और यहोवा तुझ से इसे छोड़ और क्या चाहता है, कि तू न्याय से काम करे, और कृपा से प्रीति रखे, और अपने परमेश्वर के साथ नम्रता से चले? (मीका 6:6–8)।

परमेश्वर का व्यवहार बदला नहीं है; वह आज भी कपट से घृणा करता है। वह हमसे अपने विश्वास को जीने की उम्मीद करता है।